नियमसार, प्रायश्चित्त अधिकार। शुद्ध निश्चय प्रायश्चित्त। १८६ कलश। १८६ कलश है।

आत्मज्ञानाद्भवति यमिनामात्मलब्धिः क्रमेण,
ज्ञान-ज्योतिर्निहत-करण-ग्राम-घोरान्धकारा।
कर्मारण्योद्भवदव-शिखाजालकाना-मजस्रं,
प्रध्वन्सेऽस्मिन् शमजलमयीमाशु धारां वमन्ती।।१८६।।

सूक्ष्म बात है। यहाँ कहते हैं कि संयमियों को... संयमी किसे कहना, यह अभी (खबर नहीं होती)। जिसे आत्मज्ञान हुआ हो; आत्मा राग और पुण्य के विकल्प से भी भिन्न है, ऐसा जिसे आत्मज्ञान और आत्मदर्शन हुआ हो, वह जीव जब संयम में अर्थात् स्वरूप में लीन होता है। अभी केवलज्ञान नहीं है, परन्तु स्वरूप में लीनता का भाव करता है, लीन होता है, उसे यहाँ संयमी कहते हैं। यमियों अर्थात् संयमी। सम-यम। सम्यग्दर्शनपूर्वक जिसकी स्वरूप में एकाग्रता है। आहाहा! पहले व्याख्या (कि) संयमी किसे कहना, इसका विवाद।

आत्मज्ञान और आत्मदर्शन, अन्तर में आनन्द का स्वाद आया हो, तब तो उसे आत्मज्ञान और आत्मदर्शन / समकित कहा जाता है। तदुपरान्त चारित्र में तो आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द का उग्र वेदन होता है। प्रचुर स्वसंवेदन। अतीन्द्रिय आनन्द का प्रचुर-बहुत स्वसंवेदन (होता है।) आहाहा! उसे यमी - साधु कहते हैं। आहाहा! ऐसे **यमियों को (संयमियों को) आत्मज्ञान से...** आहाहा! भगवान आत्मा पूर्ण गुण का सागर पूरा। अनन्त-अनन्त गुण का समुद्र, उसमें से उसे... आहाहा! **क्रमशः आत्मलब्धि (आत्मा की प्राप्ति) होती है—** आहाहा! दया, दान और व्रत की किसी क्रिया से आत्म-लब्धि होती है - ऐसा नहीं कहा। वहाँ कैसे बैठे बलुभाई? समझ में आया? आहाहा!

एक तो पहले सम्यग्दर्शन प्रगट करना, इसका उपाय पहले जानना चाहिए। आत्मा आनन्दस्वरूप, अतीन्द्रिय ज्ञान और शान्त अकषायस्वभाव शान्त त्रिकाल शाश्वत् वस्तु का प्रथम अनुभव, उसका अनुभव होकर प्रतीति होना, इसका नाम तो अभी सम्यग्दर्शन है। आहाहा! और वह सम्यग्दृष्टि जीव यमी-संयमी होता है। आहाहा! आत्मा में अन्दर रमने में आनन्द का प्रचुर वेदन करता है। अतीन्द्रिय आनन्द का प्रचुर वेदन-बहुत वेदन करता है। चौथे (गुणस्थान) में है, वह थोड़ा वेदन है; पाँचवें में उससे थोड़ा विशेष; छठवें (-सातवें) में विशेष है। आहाहा! ऐसे जो प्रचुर आनन्द के वेदन से आत्मलब्धि प्राप्त होती है। आहाहा! उसमें बाहर के सब व्यवहार के साधन-फाधन की तो बात भी नहीं ली है। उससे नहीं होता। यह दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि का भाव तो पुण्य है। वह कहीं धर्म नहीं है और धर्म का कारण भी नहीं है कि उससे धर्म हो, कारण हो।

यह तो **(संयमियों को) आत्मज्ञान से...** आहाहा! **क्रमशः...** क्रम-क्रम से उसे

आत्मा में लब्धि बढ़ती जाती है। आनन्द की शान्ति क्रम-क्रम से बढ़ती जाती है। आहाहा! **कि जिस आत्मलब्धि ने...** जो क्रम-क्रम से आत्मा की शान्ति और आत्मा का आनन्द सम्यग्दर्शनसहित क्रम-क्रम से अन्तर में बढ़ता जाता है। आहाहा! उस **आत्मलब्धि ने ज्ञानज्योति द्वारा...** आत्मलब्धि से ज्ञानज्योति द्वारा... आहाहा! **इन्द्रियसमूह के घोर अन्धकार का नाश किया है...** यह पाँच इन्द्रिय से देखना, वह तो अन्धकार है; वह कहीं आत्मा का ज्ञान नहीं हे। आहाहा! इन्द्रियों से देखना अज्ञान-अन्धकार है। भगवान स्वयं जो अनीन्द्रिय, ऐसा जो चैतन्य भगवान, उसे इन्द्रियों से देखते जो अज्ञान का अन्धकार है... आहाहा! उसे **ज्ञानज्योति द्वारा इन्द्रियसमूह के घोर अन्धकार का...** आहाहा! **नाश किया है...**

मुमुक्षु : इन्द्रियज्ञान का झुकाव ही छूट गया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इन्द्रिय की ओर का झुकाव ही टूट गया, कहते हैं। जरा-सा रहा है, उसे वह अन्दर में झुकाव अतीन्द्रिय में ही आया है। आहाहा! इसे संयम कहते हैं, इसे प्रायश्चित्त कहते हैं और इसे धर्म कहते हैं। ऐसा सुने बिना... कहो, क्या कहलाये? बलुभाई ने किया था न?

मुमुक्षु : वर्षीतप।

पूज्य गुरुदेवश्री : वर्षीतप। अकेला लंघन किया था।

मुमुक्षु : श्रीगुरु उसे लंघन कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : इन्होंने वर्षीतप किया था। अन्त में इनके घर आहार किया था। सब लंघन, कुछ खबर नहीं होती। भाई बैठे थे, बापा! चुनीभाई भी बैठे थे।

मुमुक्षु : इनकी वाह.. वाह.. होती थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें कुछ नहीं, धूल (है)। आहाहा!

अन्दर भगवान आत्मा पूर्ण आत्मा की सम्पदा से भरपूर, विपदा के अभावस्वभावरूप... आहाहा! वह पुण्य और पाप के भाव तो विपदा है, आपदा है, दुःख है। आहाहा! उनसे रहित भगवान अन्दर में अनन्त आनन्द और शान्ति की सम्पदा से भरपूर आत्म सम्पत्तिवाला। लोग कहते हैं न, वह तो सम्पत्तिवाला है। दो-पाँच-दस-पच्चीस लाख सम्पत्ति। वह सम्पत्ति से, वह तो धूल भी सम्पत्ति नहीं है। मरकर नरक में

चला जाएगा। आहाहा! यहाँ अरबों रुपये हो और मरकर नरक में जाए। इसमें उसके साथ क्या सम्बन्ध है ? आहाहा!

इस आत्मा को संयम से.. संयम अर्थात् यह। सम्यग्दर्शनसहित आनन्दस्वरूप में प्रचुर वेदन। उससे... आहाहा! **ज्ञानज्योति द्वारा इन्द्रियसमूह के घोर अन्धकार का नाश किया है...** आहाहा! इन्द्रिय के ओर के झुकाव का जिसने नाश किया है, कहते हैं। आहाहा! इन्द्रिय से देखना, वह कहीं आत्मा का स्वरूप नहीं है। आहाहा! इससे इन्द्रिय के समूह से उत्पन्न हुए ज्ञान में अन्धकार, उसे आत्मसंयम से उसका नाश किया है। आहाहा! अब ऐसी बात है। कभी सुनी नहीं होगी।

मुमुक्षु : बात-बात में अन्तर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात-बात में अन्तर है। आहाहा! अभी बाहर से हाँकते हैं यह किया... यह किया... यह किया... आहाहा! भाई! प्रभु! तू कौन है ? तुझे तेरी महिमा नहीं आती और तेरी अन्दर महिमा क्या भरी हुई है ? जिसकी महिमा के समक्ष इन्द्र का इन्द्रासन सड़े तृण (जैसा लगता है), ऐसा आत्मा सम्पदावाला है। ऐसी उसमें सम्पदा भरी है कि इन्द्र का इन्द्रासन, करोड़ों इन्द्राणियाँ... इन्द्र बत्तीस लाख विमान का स्वामी... आहाहा! जिसके आत्मा की सम्पदा, सम्यग्दर्शन के समक्ष तो वह सब धूल है। आहाहा! अरबों रुपये हों और चक्रवर्ती का राज हो, तो भी समकिती को धूल है। संयमियों को तो वह है ही नहीं। आहाहा!

ज्ञानज्योति द्वारा इन्द्रियसमूह के घोर अन्धकार... अर्थात् पाँच इन्द्रियों से जो काम लेता है, वह घोर अन्धकार है। आहाहा! भगवान अनीन्द्रिय... संक्षिप्त शब्दों में कितना समाहित किया है! आहाहा! प्रभु तो अन्दर अनीन्द्रिय भगवान है। उसकी खबर बिना पाँच इन्द्रिय के विषय में रुककर अज्ञान को जो सेवन करता है, वह अनीन्द्रिय ऐसा जो आत्मा, उसकी संयम की सम्पदा द्वारा उस इन्द्रिय के घोर अन्धकार का नाश होता है। कोई क्रियाकाण्ड करने से नाश नहीं होता। आहाहा! अब ऐसी बातें। निवृत्ति नहीं मिलती। आहाहा!

ज्ञानज्योति द्वारा इन्द्रियसमूह के घोर अन्धकार का नाश किया है... ओहोहो!

कहने का आशय ऐसा है कि अनीन्द्रिय ऐसा जो भगवान आत्मा, उसका दर्शन और उसकी लीनता, वह इन्द्रिय की ओर के झुकाव के घोर अन्धकार का नाश करता है। आहाहा! कहो, ऐसी बात अब इसमें तो... बाड़ा में तो यह बात भी मिले, ऐसा नहीं है। वह तो यह करो, अपवास करो, हो गया जाओ। हो गया वर्षीतप। उसे वर्षीतप हो गया। तब कहा था - यह लंघन किया है।

मुमुक्षु : ऐसी ही दृष्टि थी न?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसी ही थी। सम्प्रदाय की लाईन थी न। दूसरी कहाँ थी? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं अनीन्द्रिय ऐसा प्रभु! ये इन्द्रियाँ भाव और जड़ दोनों इन्द्रियाँ आत्मा का स्वरूप नहीं है। आहाहा! यह जड़ इन्द्रियाँ और अन्दर भावेन्द्रियाँ। एक-एक विषय को जाने, वे दोनों आत्मा का स्वरूप नहीं है। आत्मा उनसे भिन्न अनीन्द्रियस्वरूप भगवान है। उसका ज्ञान करके, उसमें स्थिरता करके इन्द्रिय की ओर के घोर अज्ञान का नाश होता है। बाकी दूसरा कोई उपाय नहीं है। आहाहा! दूसरी बात।

तथा जो आत्मलब्धि... आत्मप्राप्ति। लब्धि अर्थात् प्राप्ति। आत्मा आनन्दस्वरूप भगवान की प्राप्ति। वह **कर्मवन से उत्पन्न...** कर्म के वन से उत्पन्न... आहाहा! **(भवरूपी) दावानल...** आहाहा! यह भव उत्पन्न होता है, वह दावानल है। आहाहा! स्वर्ग का भव भी वही। आहाहा! करोड़पति का, अरबोंपति का भव, मनुष्य का भव और देव का भव, कहते हैं कि भवरूपी दावानल है। आहा! वहाँ भव में तो कषाय और मिथ्यात्व की अग्नि सुलगती है। आहाहा! उस **दावानल की शिखाजाल का...** दावानल की शिखा, ऐसा दावानल बहुत ऊँचा हो, शिखा भभक.. भभक.. सुलगती हो, ऐसी **(शिखाओं के समूह का) नाश करने के लिए उस पर सतत...** आहाहा! भव के भाव पर, भव का भाव वह अग्नि है, कषाय है। आहाहा! उस पर धर्मी जीव शिखाजाल का **नाश करने के लिए उस पर सतत...** आहाहा! **उस पर सतत शमजलमयी धारा को तेजी से छोड़ती है—** शमजलमयी—समता, वीतरागता। आत्मा के अवलम्बन से हुई आत्मलब्धि की वीतरागता, उस आत्मा की वीतरागता की लब्धि द्वारा... आहाहा! **शमजलमयी धारा को तेजी से छोड़ती है—** धीरे-धीरे नहीं। आहाहा!

संसार का अन्त आने का, इस सम्यग्दर्शनसहित संयमलब्धि की प्राप्ति, लब्धि अर्थात् प्राप्ति सहित **(भवरूपी) दावानल की शिखाजाल का...** आहाहा! उसके ऊपर शमजल की धारा डालती है। आहाहा! वीतरागता की धारा डालती है और वह भी शीघ्रता से। आहाहा! शीघ्रता से **बरसाती है।** फिर उसे भव नहीं है, इसका नाम प्रायश्चित्त है। आहाहा! कितनों ने तो ऐसा कभी सुना नहीं होगा। प्रायश्चित्त क्या और धर्म क्या? यह पर की दया पालो, यह करो, व्रत करो, हो गया धर्म। अनन्त काल बिताया, भाई! अनन्त अवतार हुए। ऐसे भव की शिखाजाल के अनन्त अवतार हुए, उन अनन्त अवतार को आत्मा की समता—सम्यग्दर्शन, ज्ञानसहित की वीतरागता शीघ्रता से छोड़ती है कि जिससे भव का नाश हो जाता है। आहाहा!

उस पर सतत शमजलमयी धारा को... सतत। जिसे एक समय का अन्तराल नहीं। आहाहा! आत्मा के स्वरूप की संयमलब्धि, शान्ति और आनन्द की प्राप्ति, उसे सतत। आहाहा! उस **सतत शमजलमयी धारा को तेजी से छोड़ती है—बरसाती है।** भव को शान्त कर देती है। आहाहा! शमजलरूपी वीतरागस्वभाव की जो धारा, वह संसार के भव का... चाहे तो स्वर्ग का भव हो या इस धूल के सेठिया कहलावें वे अरबोंपति और करोड़ोंपति, उन सबको शान्त कर डालती है। वह सब जहर का दावानल है। आहाहा! बहुत सरस! श्लोक आया है, बहुत सरस आया है!! आहाहा! १८६ (श्लोक पूरा) हुआ।

श्लोक-१८७

(उपजाति)

अध्यात्म-शास्त्रमृत-वारिराशेर्मयोद्धृता संयम-रत्नमाला।
बभूव या तत्त्वविदां सुकण्ठे सालङ्कृतिर्मुक्तिवधूधवानाम्।।१८७।।

(वीरछन्द)

संयम-रत्नमाल गूँथी अध्यात्म शास्त्र के सागर से।
मुक्ति-वधू के वल्लभ तत्त्वज्ञों का कण्ठाभूषण है॥१८७॥

[श्लोकार्थः] अध्यात्मशास्त्ररूपी अमृत समुद्र में से मैंने जो संयमरूपी रत्नमाला बाहर निकाली है, वह (रत्नमाला) मुक्तिवधू के वल्लभ ऐसे तत्त्वज्ञानियों के सुकण्ठ का आभूषण बनी है ॥१८७॥

श्लोक -१८७ पर प्रवचन

अध्यात्म-शास्त्रमृत-वारिराशेर्मयोद्धृता संयम-रत्नमाला।
बभूव या तत्त्वविदां सुकण्ठे सालङ्कृतिर्मुक्तिवधूधवानाम् ।।१८७।।

[श्लोकार्थः] आहाहा! कहते हैं **अध्यात्मशास्त्ररूपी अमृत समुद्र...** यह नियमसार, समयसार, प्रवचनसार, ये सब अध्यात्मशास्त्र हैं। आत्मा को खोलकर बतलानेवाले, आत्मा का खजाना खोलकर बाहर बतलाते हैं कि देख बापू! यह तेरा खजाना है और तू कहाँ खजाने में पड़ा है? आहाहा! अन्तर आत्मा में अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त खजाना पड़ा है। ज्ञान अनन्त, आनन्द अनन्त अनन्त शान्ति, अनन्त स्वच्छता, जीवत्वशक्ति आदि अनन्त शक्तियाँ हैं न? उन अनन्त शक्तियों का समुद्र भरा है।

उस **अध्यात्मशास्त्ररूपी अमृत समुद्र में से...** आहाहा! **मैंने जो संयमरूपी रत्नमाला बाहर निकाली है,...** संयमपना भी समझाया, ऐसा कहते हैं। अध्यात्मशास्त्र में से संयम किसे कहना, (यह समझाया है)। आहाहा! यह तो वस्त्र छोड़े और कुछ अन्दर हो जाए तो संयमी हो गया, साधु हो गया। आहाहा! **अध्यात्मशास्त्ररूपी...** महासमुद्र। आहाहा! वह तो अमृत समुद्र है। अध्यात्म शास्त्र में तो अमृत भरा है। आत्मा के जीवन का अमृत और यह राग-द्वेष का जीवन तो जहर का जीवन है। आहाहा! संसार का जो राग और द्वेष, उसके असंख्य प्रकार हैं। राग और द्वेष के। उससे जीवन है, वह तो जहर का जीवन है। जहर के ग्रास भरता है। आहाहा! ज़हर के प्याले पीता है। आहाहा! वह तो अध्यात्मशास्त्र अमृत का सागर भगवान।

कहते हैं कि **अमृत समुद्र में से मैंने जो संयमरूपी रत्नमाला बाहर निकाली है,...** अध्यात्मशास्त्र में से संयम किसे कहना, यह मैंने बाहर समझाया। आहाहा! **वह (रत्नमाला) मुक्तिवधू के वल्लभ...** आहाहा! ऐसा जो अमृत सागर शास्त्र, उसमें से जो मैंने संयमरूपी

रत्न निकाला, वह रत्न मुक्तिवधू, मुक्तिरूपी स्त्री के वल्लभ। आहाहा! **ऐसे तत्त्वज्ञानियों के...** आहाहा! तत्त्वज्ञानी धर्मी तो मुक्तिवधू के वल्लभ हैं। मोक्ष के वल्लभ हैं। संसार के जहर को तो निकाल डाले ऐसा है। आहाहा! **मुक्तिवधू के वल्लभ...** मोक्षरूपी जो स्त्री-निर्मल परिणति, उसके जो वल्लभ हैं, प्रिय हैं—ऐसे तत्त्वज्ञानी। तत्त्वज्ञानी उन्हें कहते हैं... आहाहा! कि जिन्हें मोक्षरूपी लक्ष्मी प्रिय है। आहाहा! जिन्हें यह पैसा-वैसा धूल और शरीर की इन्द्रियों का ज्ञान प्रिय नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अज्ञानी को अज्ञान प्रिय है। इन्द्रिय के विषय का वह जहर (प्रिय है)। आहाहा! जहर का प्याला घोल-घोलकर पीता है, अज्ञानी राग और द्वेष के घूँट पीता है। आहाहा! जो प्रभु आत्मा में वह है नहीं।

यहाँ आचार्य मुनिराज कहते हैं कि मैंने तो अध्यात्मशास्त्र में से यह संयमरूपी रत्नमाला निकाली, वह किसके लिये? आहाहा! **मुक्तिवधू के वल्लभ ऐसे तत्त्वज्ञानियों के सुकण्ठ का आभूषण बनी है।** आहाहा! उनके कण्ठ का आभूषण। अमृत सागर तो प्रगट हुआ परन्तु वाणी में भी अमृत सागर को बरसाते हैं। आहाहा! ऐसा आभूषण है। लो, ऐसा उपदेश। आहाहा! अध्यात्मशास्त्र में से यह निकाला है। साधारण शास्त्र में से नहीं ऐसी बात। और वह संयमरूपी रत्नमाला मैंने निकाली है। आहाहा!

मुमुक्षु : माला में रत्न चाहिए न।

पूज्य गुरुदेवश्री : माला स्वयं रत्न है। यहाँ अकेली रत्न की ही माला है। अकेले ज्ञान-दर्शन-चारित्र-आनन्द आदि रत्न भरे हैं। वह रत्न की माला संयम है। आहाहा! संयमरूपी रत्न कहा न? वह चारित्र, हों! वह रत्नमाला बाहर निकाली है। शास्त्र में से बाहर निकालकर मैंने समझायी है।

वह (रत्नमाला) मुक्तिवधू के वल्लभ... मोक्षरूपी स्त्री के जो वल्लभ **ऐसे तत्त्वज्ञानियों...** आहाहा! कितना भरा है! तत्त्वज्ञानी उन्हें कहते हैं कि जिन्हें मोक्ष वल्लभ है, मोक्ष प्रिय है। आहाहा! उसका साध्य मुक्ति है, ध्येय आत्मा है परन्तु साध्य मुक्ति है। मुक्ति का मार्ग भी नहीं, जिन्हें मुक्ति प्रिय है। देखा! आहाहा! अब ऐसा सुनना। पूरे दिन संसार में पड़ा, मजदूरी करके मर जाते हैं बेचारे। यह स्त्री का किया, पुत्र का किया, धन्धा

किया, पाँच-पचास करोड़ इकट्ठे किये।

मुमुक्षु : अशीलों का किया। वकीलों ने अशीलों का किया, कितनों को जेल में से छुड़ाया।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वकील। ऐसी वकालात की, अमुक को छुड़ाया... अमुक को छुड़ाया... अमुक को छुड़ाया।

मुमुक्षु : उन्हें सुखी कर दिया न? साहेब!

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नहीं किया। अभिमान किया है। आहाहा! डॉक्टर कहते हैं कि मैंने इंजेक्शन चढ़ाया, यह दवा दी। उसके कारण रोग मिटता है। वकील कहते हैं कि मैंने इन्हें छुड़ाया। दोनों समान, दोनों जहर के प्याले हैं। आहाहा! मार्ग अलग, प्रभु! आहाहा!

यह मुनिराज कहते हैं कि मैंने यह संयमरूपी रत्नमाला अध्यात्मशास्त्र में से निकाली है। यह मुक्ति के प्रेमी जीव को सुकण्ठ में... आहाहा! शोभे ऐसी है। उसके आत्मा में शोभे ऐसी है। आहाहा! **ऐसे तत्त्वज्ञानियों के सुकण्ठ का आभूषण बनी है।** आहाहा! ऐसी प्ररूपणा और ऐसी सूक्ष्म बातें। लोगों को कठिन पड़ता है। अभ्यास नहीं होता, अभ्यास नहीं। पूरे दिन संसार, कमाना पैसा और धूल और .... आहाहा! अफ्रीका में पैसा... पैसा... पैसा। पाँच लाख और दस लाख और बीस लाख और धूल लाख... रतिलाल एक अरबपति आया था न? वहाँ आया था। मुम्बई आया था।

मुमुक्षु : लन्दन में मन्दिर बनाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, मन्दिर बनाते हैं। अरबपति है। छोटी उम्र है। बड़ा भाई था, वह मर गया। परन्तु तत्त्व की कुछ खबर नहीं होती। पैसा मानो दो-पाँच-पच्चीस लाख खर्च करे और उसमें हो... हा... होवे और आहाहा! बैण्ड-बाजा बजे और ऐसा बड़ा रथ निकले... आहाहा! उसमें धूल में भी कुछ नहीं है। उसमें राग की मन्दता करता हो तो पुण्य है। वह पुण्य भी बन्धन का कारण जहर है। आहाहा! काला नाग है। शुभराग जो है, वह भी काला नाग है। भगवान आत्मा अमृत का सागर है, उसके सन्मुख देखे बिना उस अमृत का स्वाद इसे नहीं आता और अकेला अनादि संसार के राग के स्वाद में रच-पच जाता है। आहाहा! मुनिराज ने गजब श्लोक (कहा)। १८७ हुए न?

श्लोक-१८८

(उपेन्द्रवज्रा)

नमामि नित्यं परमात्मतत्त्वं मुनीन्द्रचित्ताम्बुजगर्भवासम्।
विमुक्तिकान्ता-रतसौख्यमूलं विनष्टसन्सारद्रुमूलमेतत्।।१८८।।

(वीरछन्द)

मुनिजन चित्त-कमल का वासी, मुक्ति कामिनी रति सुख मूल।
नित्य नमूँ परमात्मतत्त्व को भवतरु किया विनष्ट समूल॥१८८॥

[श्लोकार्थः] मुनीन्द्रों के चित्तकमल के (हृदयकमल के) भीतर जिसका वास है, जो विमुक्तिरूपी कान्ता के रतिसौख्य का मूल है (अर्थात् जो मुक्ति के अतीन्द्रिय आनन्द का मूल है) और जिसने संसारवृक्ष के मूल का विनाश किया है—ऐसे इस परमात्मतत्त्व को मैं नित्य नमन करता हूँ॥१८८॥

श्लोक -१८८ पर प्रवचन

१८८ (श्लोक)

नमामि नित्यं परमात्मतत्त्वं मुनीन्द्रचित्ताम्बुजगर्भवासम्।
विमुक्तिकान्ता-रतसौख्यमूलं विनष्टसन्सारद्रुमूलमेतत्।।१८८।।

[श्लोकार्थः] मुनीन्द्रों के चित्तकमल के (हृदयकमल के) भीतर जिसका वास है,... आहाहा! परमात्म तत्त्व बसता है। मुनीन्द्र के हृदय में परमात्मा बसता है। ओहोहो! मुनीन्द्र और समकिती के हृदय में परमात्मा का ध्येय वर्तता है। मैं परमात्मस्वरूप हूँ, ऐसा वर्तता है। आहाहा! **मुनीन्द्रों के चित्तकमल के (हृदयकमल के) भीतर जिसका वास है, जो विमुक्तिरूपी कान्ता के रतिसौख्य का मूल है...** आहाहा! जो मुक्तिरूपी स्त्री के साथ सम्बन्ध करना, उस आनन्दरूपी रति के सुख का मूल है। आहाहा! वहाँ अतीन्द्रिय आनन्द की रति का सुख है। आहाहा! उसे यहाँ संयमी कहते हैं, उसे यहाँ प्रायश्चित्त लेनेवाला कहते हैं, उसे प्रायश्चित्ति अथवा धर्मी कहते हैं। आहाहा!

मुनीन्द्रों के चित्तकमल के (हृदयकमल के) भीतर जिसका वास है,... भगवान का। आहाहा! यह परमात्मा अन्दर हृदयकमल में बसता है परन्तु इसके सन्मुख कभी देखता नहीं और धूल के सन्मुख तथा इन्द्रिय विषय के सन्मुख देख-देखकर अनन्त जिन्दगी बितायी। आहाहा! अनन्त-अनन्त भव बिताये परन्तु भगवान परमात्मा, चैतन्यप्रभु, सहजानन्दी आत्मा अन्दर चित्त में विराजता है, उसके सन्मुख कभी देखा नहीं। आहाहा! बाहर के इन्द्रियों के विषय में शुभ और अशुभ दोनों विषय में रुकने से... आहाहा! चित्तकमल के अन्दर जिसका वास है, उसे देखा नहीं। चित्तकमल के अन्दर यह भगवान बसता है। आहाहा! आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का सागर है। अतीन्द्रिय अनन्त.. अनन्त.. अनन्त आनन्द का सागर है और अतीन्द्रिय अनन्त-अनन्त शान्ति... शान्ति... शान्ति... अकषायभाव, अनन्त शान्ति से भरपूर भगवान है। आहाहा! वह अन्दर चित्तकमल में विराजता है। आहाहा! परन्तु अन्दर देखे उसे खबर पड़े न! आहाहा! ऐसी बात है।

मुनीन्द्रों के चित्तकमल के (हृदयकमल के) भीतर जिसका वास है, जो विमुक्तिरूपी कान्ता के रतिसौख्य का मूल है... वास्तविक आनन्द का मूल तो वह भगवान आत्मा परमात्मा स्वयं है। आत्मा स्वयं परमात्मा ही है। सब आत्माएँ अन्दर स्वभावभाव से परमात्मा ही है। आहाहा! यह सब फेरफार था, वह इन्द्रिय के विषय और कर्म के कारण सब विकृतपना और फेरफार दिखता है। बाकी तो प्रत्येक आत्मा अन्दर में भगवान परमात्मस्वरूप है। आहाहा! परमात्मस्वरूप न होवे तो परमात्मा केवली होंगे कहाँ से? कहीं बाहर से आवे, ऐसा कुछ है? आहाहा! केवलज्ञान और परमात्मदशा, वह परमात्मस्वरूप स्वयं है, उसमें से आती है। आहाहा! साधारण प्राणी को ऐसा? साधारण प्राणी साधारण है ही नहीं। सब असाधारण आत्मा परमात्मा हैं।

सबको सुख चाहिए। सुख तो यहाँ है। आहाहा! मृग की नाभि में कस्तूरी। उसकी गन्ध वन में देखते हुए चारों ओर वन में दौड़ता है, इसी प्रकार भगवान आत्मा में अन्दर आनन्द है और बाहर में गुलांट खाता है। यहाँ से मिलेगा। इन्द्रिय के विषय खाने से, पीने से, भोग से... आहाहा! प्रभु! उसने आत्मा को मार डाला। विद्यमान चीज़ को अविद्यमान किया और अविद्यमान चीज़ को विद्यमान कर दिया। आहाहा! जो कायम रहनेवाली नहीं, क्षणिक है, दुःख है, विकार है, विपाक है, उसका विकार है... आहाहा! उस अविद्यमान

को विद्यमान करके ऐसा का ऐसा मर गया। विद्यमान चीज़ अन्दर परमात्मा जो है... आहाहा!

भीतर जिसका वास है, जो विमुक्तिरूपी कान्ता (स्त्री) के रतिसौख्य का मूल है (अर्थात् जो मुक्ति के अतीन्द्रिय आनन्द का मूल है)... मुक्ति अर्थात् मोक्ष के आनन्द का मूल... आहाहा! परमात्मा है। अन्दर इस चित्तकमल में विराजमान भगवान स्वयं... आहाहा! श्लोक किये हैं कुछ! गजब किया है! आहाहा! अमृत बरसाया है!! आहाहा!

मुमुक्षु : अमृत तो आप बरसाते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : अमृत बरसाया है। आहाहा!

कहते हैं प्रभु! परन्तु तेरे चित्तकमल में यह परमात्मा विराजता है न! वहाँ देखता नहीं और यह क्या करता है? आहाहा! बाहर में तू है नहीं, वहाँ तू देखा करता है और जहाँ तू है, वहाँ देखता नहीं। आहाहा! थोड़ी बात में बहुत बड़ी बात। आहाहा! लोग तो भरते हैं, हों! अब वहाँ करे तो दिक्कत नहीं। महिलाएँ बहुत हैं। आहाहा!

(अर्थात् जो मुक्ति के अतीन्द्रिय आनन्द का मूल है) और जिसने संसारवृक्ष के मूल का विनाश किया है— आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ प्रभु परमात्मस्वरूप विराजमान है। उसका ध्यान करके... आहाहा! उसका झुकाव करके **संसारवृक्ष के मूल का विनाश किया है—** संसारवृक्ष का मूल मिथ्यात्व, अज्ञान का तो विनाश किया है। **ऐसे इस परमात्मतत्त्व को...** देखा! यहाँ तो परमात्मतत्त्व लेना। स्वयं अपना, हों! आहाहा! मुनीन्द्रों के चित्तकमल में परमात्मा विराजते हैं। अन्दर जिसका वास है। **जो विमुक्तिरूपी कान्ता के रतिसौख्य का मूल है (अर्थात् जो मुक्ति के अतीन्द्रिय आनन्द का मूल है)** आहाहा! **और जिसने संसारवृक्ष के मूल का विनाश किया है—** आहाहा! संसार के बीज जला डाले हैं। आहाहा! और केवलज्ञान का बीज बोया, वहाँ परमात्मप्रकाश को प्रगट किया। आहाहा! कहो, ऐसा तो, वहाँ सुना नहीं होगा, वर्षीतप किया था, उसमें आहाहा!

संसाररूपी वृक्ष फलाफूला यह भटकने का... आहाहा! उसका तो परमात्म ने विनाश किया है। परमात्मतत्त्व अन्दर है, उसकी दृष्टि और अनुभव करने पर यह संसार फलाफूला दिखता है, उसे मार डाला है, नाश कर डाला है, आहाहा! और जीवती ज्योति चैतन्य प्रभु को सन्मुख रखा है। आहाहा! अमृत का सागर भगवान! उस विद्यमान चीज़ को विद्यमान

किया है। उस अविद्यमान चीज़ का तो नाश कर डाला है। आहाहा! ऐसा उपदेश है। आहाहा! अनजाने व्यक्ति ने तो कभी सुना नहीं होगा। पूरे दिन धन्धा, पाप, पूरे दिन पाप—खाना-पीना, कमाना, दुकान में धन्धा, आठ-आठ घण्टे, दस-दस घण्टे दुकान में बैठे, ग्राहक को दिया... आहाहा! पूरी जिन्दगी जाती है। जहर में जिन्दगी जाती है। परमात्मतत्त्व यहाँ विराजता है। सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ ऐसा कहते हैं। मुनि यह कहते हैं कि परमात्मा ऐसा कहते हैं कि परमात्मतत्त्व तो तू यहाँ अन्दर में है न, प्रभु! उसे छोड़कर तू बाहर यह सब प्रपंच में कहाँ पड़ा? आहाहा!

संसारवृक्ष के मूल का विनाश किया है—ऐसे इस परमात्मतत्त्व को मैं नित्य नमन करता हूँ। आहाहा! मुनिराज कहते हैं, परमात्मा की ओर मेरा ढलान नित्य है, कायम ढलान है। आहाहा! एक समय भी व्यवहार और निमित्त में मेरा झुकाव नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भगवान परमात्मस्वरूप ही अन्दर विराजता है। उसके सन्मुख देखने पर उस परमात्मा का अनुभव होता है। वह परमात्मतत्त्व मैं हूँ। वह परमात्मतत्त्व मैं हूँ। आहाहा! यहाँ अरबों रुपये और करोड़ों रुपये धूल एकत्रित की। आहाहा! अरबोंपति, कहा न! नैरोबी। गाँव में ऐसे पन्द्रह अरबपति हैं। एक अफ्रीका के नैरोबी में पन्द्रह अरबपति और साढ़े चार सौ करोड़पति—साढ़े चार सौ धूल के पति।

मुमुक्षु : सबकी रिपोर्ट आपके पास आ जाती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे लोग बातें करते थे। सब करोड़पति व्याख्यान में आते थे। छब्बीस दिन रहे न? छब्बीस दिन। तब शरीर को भी ठीक रहा। वहाँ का हवा-पानी भी यहाँ के जैसे रहे। नहीं तो वहाँ तो दूसरा दिन निकलने के बाद तो वर्षा और यह सब हुआ। छब्बीस दिन कुछ नहीं हुआ।

मुमुक्षु : अभी कुछ मिलता नहीं। घी नहीं, दूध नहीं, चावल नहीं, नमक नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : और पैसा का ढ़ेर। वस्तु मिले नहीं। आहाहा! ऐसा का ऐसा दु:खी होकर बेचारा मर जाता है। आहाहा! ११७ गाथा (पूरी) हुई।

गाथा-११८

णंताणंतभवेण समज्जियसुहअसुहकम्मसंदोहो ।
तवचरणेण विणस्सदि पायच्छित्तं तवं तम्हा ।।११८।।

अनन्तानन्तभवेन समर्जितशुभाशुभकर्मसन्दोहः ।
तपश्चरणेन विनश्यति प्रायश्चित्तं तपस्तस्मात् ।।११८।।

अत्र प्रसिद्धशुद्धकारणपरमात्मतत्त्वे सदान्तर्मुखतया प्रतपनं यत्तत्तपः प्रायश्चित्तं भवतीत्युक्तम् । आसन्सारत एव समुपार्जितशुभाशुभकर्मसन्दोहो द्रव्यभावात्मकः पञ्चसन्सारसम्वर्धनसमर्थः परमतपश्चरणेन भावशुद्धिलक्षणेन विलयं याति, ततः स्वात्मानुष्ठाननिष्ठं परमतपश्चरणमेव शुद्धनिश्चयप्रायश्चित्तमित्यभिहितम् ।

अर्जित अनन्तानन्त भव के जो शुभाशुभ कर्म हैं ।
तप से विनश जाते, सुतप अतएव प्रायश्चित्त हे ॥११८॥

अन्वयार्थ : [अनन्तानन्तभवेन] अनन्तानन्त भवों द्वारा [समर्जितशुभाशुभकर्मसंदोहः] उपार्जित शुभाशुभ कर्मराशि [तपश्चरणेन] तपश्चरण से [विनश्यति] नष्ट होती है; [तस्मात्] इसलिए [तपः] तप [प्रायश्चित्तम्] प्रायश्चित्त है।

टीका : यहाँ (इस गाथा में), प्रसिद्ध शुद्धकारणपरमात्मतत्त्व में सदा अन्तर्मुख रहकर जो प्रतपन वह तप प्रायश्चित्त है (अर्थात् शुद्धात्मस्वरूप में लीन रहकर प्रतपना—प्रतापवन्त वर्तना सो तप है और वह तप प्रायश्चित्त है) ऐसा कहा है।

अनादि संसार से ही उपार्जित द्रव्यभावात्मक शुभाशुभ कर्मों का समूह—कि जो पाँच प्रकार के (-पाँच परावर्तनरूप) संसार का संवर्धन करने में समर्थ है वह—भावशुद्धि लक्षण (-भावशुद्धि जिसका लक्षण है ऐसे) परमतपश्चरण से विलय को प्राप्त होता है; इसलिए स्वात्मानुष्ठाननिष्ठ (-निज आत्मा के आचरण में लीन) परमतपश्चरण ही शुद्धनिश्चयप्रायश्चित्त है ऐसा कहा गया है।

गाथा - ११८ पर प्रवचन

११८ गाथा।

णंताणंतभवेण समज्जियसुहअसुहकम्मसंदोहो।
तवचरणेण विणस्सदि पायच्छित्तं तवं तम्हा।।११८।।

अर्जित अनन्तानन्त भव के जो शुभाशुभ कर्म हैं।
तप से विनश जाते, सुतप अतएव प्रायश्चित्त हे॥११८॥

परन्तु यह तप कौन सा? आहाहा! यह कहेंगे।

टीका : यहाँ (इस गाथा में), प्रसिद्ध शुद्धकारणपरमात्मतत्त्व में सदा अन्तर्मुख रहकर जो प्रतपन वह तप... यह तप की व्याख्या। अपवास करना, छह महीने का लंघन करना, वह अपवास नहीं; वह तो लंघन है। आहाहा! यह **प्रसिद्ध शुद्धकारणपरमात्मतत्त्व...** यहाँ तो प्रसिद्ध है, कहते हैं। आहाहा! अन्दर भगवान कारणपरमात्मा शक्तिस्वभावरूप से कायम प्रसिद्ध है वह तो। आहाहा! उसे तूने अप्रसिद्ध कर डाला और यह अप्रसिद्ध है, उसे प्रसिद्ध कर डाला। इन्द्रियों के विषय और उनके फल और... आहाहा! ऐसी बात है। मुम्बई में दुकान हो, बराबर चलती हो। 'टोलिया'! इन्हें बाजार में दुकान है। दुकान में गये थे न? और दुकान चलती हो, आमदनी होती हो, लड़के आवें। आहाहा! धमाधम तुम्हारे... आहाहा! निवृत्ति नहीं मिलती। हमारे यहाँ लड़के हैं न 'भूपेन्द्र डाईंग एण्ड प्रिन्टिंग वर्क्स' छापखानावाले।

मुमुक्षु : किसी समय मिलने आते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहार के समय आया था। बाकी तो सामने देखे नहीं। आवे और सामने देखे नहीं। कमाने के कारण धूल में रूकता है। आहाहा!

मुमुक्षु : अभी कमा लें फिर आत्मा का करेंगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : कमा-कमाकर मर जाएगा। मैंने तो एक बार कहा था कि पूरे दिन यह करते हो, मरकर ढोर होओगे। याद रखना। उसके लड़कों के पास साठ लाख रुपये हैं। वह हमारे भाई के पुत्र हैं। 'भूपेन्द्र डाईंग एण्ड प्रिन्टिंग वर्क्स' खेतबाड़ी में। मरकर

पशु होओगे, याद रखना। सामने देखते नहीं, सुनने आते नहीं और बहुत से बनिये तो ढोर ही होनेवाले हैं। धर्म नहीं, तथा पुण्य नहीं। पुण्य कब होता है? कि दो-चार घण्टे सत्समागम हो। सत्समागम कहना किसे, इसकी भी अभी खबर नहीं होती। जिस-तिस साधु ने वस्त्र पहने हों, उसे सत्य माने और उसके साथ रहे, वह तो मिथ्यात्व का पोषण है। आहाहा! प्रतिदिन दो-चार घण्टे सत्समागम होवे तो पुण्य भी बाँधे, तो स्वर्ग में जाए, अच्छा मनुष्य होवे। आहाहा!

मुमुक्षु : आपके भाई के पुत्र को आपको पशु में भेजना है?

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान ने ऐसा कहा है। भगवान ने ऐसा कहा है कि जिसे कुछ धर्म की खबर नहीं... आहाहा! और सत्समागम से कुछ पुण्य भी नहीं बाँधा। सत्समागम दो-चार घण्टे, एक घण्टे सुनकर चले जाएँ और फिर उसका कुछ ठिकाना न हो। दो-चार घण्टे, पाँच-पाँच घण्टे सत्समागम में आवे तो उसे पुण्य तो बँधे, तो स्वर्ग में जाए, मनुष्य में आवे। यह दोनों न हों, वे ढ़ोर में जानेवाले हैं। आहाहा! ये करोड़पति और अरबोंपति सब पशु होनेवाले हैं। आहाहा! कठिन बात है बापू! सत्य तो यह है परन्तु अब जगत को... आहाहा! अज्ञान का इतना विस्तार हो गया है, मिथ्यात्व का इतना अधिक प्रचार हुआ है कि उसमें आत्मा का समकित क्या है, यह बात तो पूरी गुम हो गयी है। आहाहा! सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ ने जो कहा... आहाहा! वह बात तो एक ओर पड़ी रही और उसे छोड़कर सब बहुत-बहुत प्रकार के भेद डाले हैं, वे सब अज्ञान के भेद हैं, यह एक ही परमात्मा त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव के मुख से वाणी निकली है, वह यह शास्त्र है।

यहाँ (इस गाथा में), प्रसिद्ध शुद्धकारणपरमात्मतत्त्व में... परमात्मस्वरूप आत्मा प्रसिद्ध है। अस्ति है और प्रसिद्ध है। सत्ता है और अस्तिरूप से प्रसिद्ध है। आहाहा! यह सब अप्रसिद्ध है। उस क्षणिक में रुके हुए... ५०-५०, ६० वर्ष उसमें रहकर चले जाएँ पशु की तरह। आहाहा! कठिन काम है, बापू! **प्रसिद्ध शुद्धकारणपरमात्मतत्त्व में सदा अन्तर्मुख रहकर...** देखा? अन्तर्मुख। परमात्मा अन्दर आत्मा अन्तर्मुख है। बहिर्मुख इन्द्रियों के विषय में वह नहीं है। आहाहा! अन्दर की निर्मल वीतरागी पर्याय द्वारा अन्तर्मुख से दिखायी दे, ऐसा यह आत्मा है। आहाहा! वीतरागी निर्मल पर्याय... आहाहा! उससे **अन्तर्मुख रहकर जो प्रतपन, वह तप...** देखो! कहो, बलुभाई! यह तुम्हारे अपवास को

तप नहीं कहा। आहाहा! महिलाएँ वर्षीतप करें। पश्चात् पति पास में पैसा होवे तो उत्सव करे, पाँच-दस हजार खर्च करे। महिलाएँ रात्रि में गाना गाने इकट्ठी हों, फिर सबको प्रभावना दे तो ओहोहो! उसमें अन्तिम और कुछ ढोंग करे, अट्ठम करे तो कहे सिर दुःखता है। सोंठ-बोंठ चोपड़े।

मुमुक्षु : सुखड़ चोपड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुखड़ चोपड़े। आहाहा! सब देखा है न। आहाहा!

यह प्रभु अन्दर परमात्मतत्त्व विराजमान है। अन्तर्मुख देख! - ऐसा कहते हैं। अन्तर्मुख विराजमान है। बहिर्मुख की दृष्टि से ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! **अन्तर्मुख रहकर जो प्रतपन...** देखो! अन्तर में रहकर प्र-विशेष, तपन अर्थात् एकाग्रता। शुद्धता में बहुत चारित्रसहित एकाग्रता। चारित्रसहित, हों! अकेली नहीं। तब उसे तप कहने में आता है। आहाहा! तपन्ते इति तपः। जैसे सोना गेरूं से ओपता और शोभता है, वैसे भगवान आत्मा अन्तर की एकाग्रता के निर्मल परिणाम से शोभता और ओपता है। आहाहा! उसे तपस्या कहा जाता है। बाकी सब लंघन-लंघन है। आहाहा! यह तप की व्याख्या आयी।

शुद्धकारणपरमात्मतत्त्व में सदा अन्तर्मुख रहकर... आहाहा! वह भी **सदा अन्तर्मुख रहकर...** वापस, हों! आहाहा! जिसने सम्यग्दर्शन प्रगट किया, उसे तो दृष्टि में सदा परमात्मा ही विराजता है। उसके ध्येय में तो परमात्मा सदा है। आहाहा! उसकी दृष्टि में दृष्टि का विषय भी दृष्टि नहीं। दृष्टि का विषय तो ध्येय परमात्मा है। आहाहा! वह राग को गिनता नहीं, पर्याय को मानता नहीं, त्रिकाली परमात्मा.. आहाहा! **अन्तर्मुख रहकर जो प्रतपन...** वापस प्रतपन कहा। अकेला तप नहीं लिया। प्रतपन अर्थात् चारित्रसहित आनन्द की रमणता में विशेष अतीन्द्रिय आनन्द में उछाला मारना। समुद्र के किनारे जैसे ज्वार आती है, वह उसमें भरा हुआ है, उसमें से ज्वार आता है। इसी प्रकार भगवान में अतीन्द्रिय आनन्द भरा है। उसमें से पर्याय के किनारे अतीन्द्रिय आनन्द का ज्वार आता है, उसे तप कहा जाता है। आहाहा! बात-बात में अन्तर। वे लोग नहीं कहते? 'आनन्दा कहे परमानन्दा माणसे माणसे फेर, एक लाखे न मले, और एक त्रांबिया न तेर।' इसी प्रकार यहाँ प्रभु कहते हैं तुझे और मुझे बात-बात में अन्तर है, प्रभु! आहाहा! मोक्ष का मार्ग और तेरी प्रतीति का झुकाव, इन दोनों को (परस्पर) विपरीतता है। आहाहा!

प्रतपन वह तप प्रायश्चित्त है... पाप लगा और गुरु के पास जाकर कुछ उपवास, दो उपवास लिये, वह तो सब बाहर की बातें हैं। वह पुण्य बन्ध का कारण, वह तो संसार है। आहाहा! **(अर्थात् शुद्धात्मस्वरूप में लीन रहकर...)** देखा! **शुद्धात्मस्वरूप में लीन रहकर प्रतपना—** आहाहा! प्रतपना—प्रतापवन्त वर्तना। प्रतापवन्त वर्तना, अपना प्रताप। पर्याय में आनन्द की ओर का प्रताप वर्ते। जिसके प्रताप में दया, दान का विकल्प भी प्रतापवन्त जिसमें नहीं है। आहाहा! युवाओं ने तो ऐसा सुना भी नहीं होगा। सात-आठ वर्ष कमाने का पढ़े हों, सात-आठ वर्ष उसमें जाए। निवृत्त होकर फिर धन्धे में उलझ जाए। हो गया। आहाहा!

(सो तप है और वह तप प्रायश्चित्त है)... उस तप को भगवान ने प्रायश्चित्त कहा है। क्या कहा? शुद्धात्मस्वरूप, त्रिकाली शुद्ध परमात्मस्वरूप में (लीन) रहकर, लीन रहकर... आहाहा! आनन्द की उग्रता होना, इसका नाम तप है। आहाहा! और वह तप प्रायश्चित्त है, ऐसा भगवान ने कहा है। त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव परमेश्वर महाविदेह में विराजमान हैं, उनका यह कथन है। परमात्मा साक्षात् विराजते हैं। सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ (विराजते हैं)। आहाहा! यह बात जँचना... यह थोड़ा देश इतना है और महाविदेह कहाँ रहा, उसे मानना! महाविदेह में साक्षात् बीस तीर्थंकर विराजमान हैं। लाखों केवली विराजते हैं। लाखों केवली! आहाहा! वहाँ की यह बात है, वहाँ से आयी हुई यह बात है। आहाहा! उसे प्रायश्चित्त कहते हैं, दूसरे को प्रायश्चित्त नहीं कहते।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)